व्यक्तित्व गठन की सार्थक राह

व्यक्ति के जीवन को सार्थक बनाने में उसके चारित्रिक गुणों की विशेष भूमिका होती है। आधुनिक समाज में व्यक्ति से जुड़ी तमाम समस्याओं का एक सिरा उसके चरित्र से जुड़ा है। वर्तमान दौर में आधुनिक व्यक्ति का जीवन बाजारवादी मूल्यों की धुरी पर धूम रहा है। ये मूल्य व्यक्ति को इच्छाओं का दास बनाकर लट्टू की तरह घुमाते हैं। आधुनिक समाज में एक ओर सामंती मूल्यों ने रिवाजों और मर्यादाओं के नाम पर रूढ़िबद्धता को बढ़ावा देकर लोगों की सोच को अतार्किक बना रखा है तो दूसरी ओर बाजारवादी मूल्य लोभ, मोह, लाभ के चकाचौंध में व्यक्ति को फंसाकर उसकी इच्छाओं को विकृत कर रहे हैं। पश्चिम के अनुकरण की आदत, नई पीढ़ी की उद्देश्यहीनता, सुनिश्चित जीवन दर्शन का अभाव, स्वार्थपरता, प्रतिद्वंद्विता का भाव, पूंजी बटोरने की मानसिकता, सुविधापरस्ती जैसे लक्षण भारतीय संस्कृति के महान मूल्यों को जीवन से विस्थापित करते जा रहे हैं। इसी के चलते आज तमाम सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याएं मुंह बाए खड़ी दिखाई देती हैं। भले ही यह समस्याएं बाह्य तौर पर व्यापक नजर आएं लेकिन इनका एक सिरा व्यक्ति के चरित्र से जुड़ा है। इसका सबसे बड़ा तर्क यह है कि समाज व्यक्तियों से बनता है। व्यक्ति की सोच और उससे प्रभावित कर्म ही समाज और संस्कृति के रूप को निर्धारित करते चलते हैं और व्यक्ति की सोच और उसके कर्म उसके चरित्र से प्रभावित होते हैं। मानवीय मूल्यों पर मंडराते संकट के इस दौर में कुसुम खेमानी का 'लावण्यदेवी' उपन्यास लावण्य, ज्योतिर्मयी और प्रभावती के चरित्रों के जरिए स्त्री के अस्तित्व को सार्थक तथा सही अर्थों में आधुनिक बनाने की राह दिखा रहा है। साथ ही यहाँ लावण्य का जीवन-ज्ञान व्यक्ति और परिवेश के पारस्परिक संबंध को भी पुनर्परिभाषित कर रहा है। यहाँ व्यक्ति अपने चरित्र बल से परिवेश में सकारात्मक परिवर्तन लाने की संभावनाओं से घिरा दिखाई देता है। आधुनिक समाज में जहाँ व्यक्ति के नैतिक मूल्य दबते चले जा रहे हैं वहीं यह उपन्यास व्यक्ति में प्रखर मूल्यबोध जगाने के जरिए मानवता और न्याय का नया साम्राज्य खड़ा करने का सवाल उठाता है।

सहज जीवन जीने का अभ्यास भारतीय संस्कृति का एक खास मूल्य है। बाजारवाद वस्तुओं की चकाचौंध से व्यक्ति के मस्तिष्क को अस्थिर बना देता है। उसमें बाह्य वस्तुओं के दम पर बेहतर जीवन जीने की इच्छा का बीज बो देता है। बाजारवादी ताकतों में हर उम्र के व्यक्ति की इच्छाओं को विकृत करने के लिए अलग-अलग प्रलोभनों की फौज हैं। इच्छाओं के नियंत्रण में असमर्थ महत्त्वाकांक्षी आधुनिक स्त्री जब ऐसे प्रलोभनों का शिकार हो जाए तो वह अपने साथ अगली पीढ़ी के लिए भी बर्बादी का कारण बन जाती है। आधुनिकता के नाम पर फैशनपरस्ती, दायित्वहीन आजादी, सुख सुविधाओं का पीछा करने वाली आज की स्त्रियों के लिए लावण्य का चरित्र एक मिसाल खड़ी करता है। लावण्य संतुष्ट भाव से सीधा सादा जीवन जीने की राह चुनती है। वह पिता के घर में हासिल सुख सुविधाओं को साधारण घर में ब्याहे जाने के अगले दिन ही भूलकर नया जीवन शुरू करती है। इतना ही नहीं वह रूप और गुण में सम्पन्न होने के बावजूद मां द्वारा मनोनित एक साधारण व्यक्ति से बिना किसी मतभेद के विवाह करना स्वीकार करती है। दरअसल लावण्य के चरित्र में सादगी का यह गुण उसकी मां ज्योतिर्मयी देवी की निगरानी में ही विकसित हुआ है। इस संदर्भ में लावण्य की मां ज्योतिर्मयी देवी के चरित्र पर एक नजर डालना जरूरी है।

ज्योतिर्मयी देवी ने कभी लावण्य पर अपना निर्णय नहीं थोपा। वह लावण्य की नस-नस से वाकिफ थी। उन्हें लावण्य की छोटी-से छोटी सोच की बारीक समझ थी। इस समझ की गहरी नींव पर लावण्य और ज्योतिर्मयी देवी का संबंध टिका हुआ था। तभी अपनी सूझ-बूझ से जब लावण्य एक प्रख्यात निर्देशक का स्वर्ण अवसर देने वाला आग्रह ठुकराती है, तब ज्योतिर्मयी देवी का मन खुशी से भर उठता है। इस संदर्भ में ज्योतिर्मयी देवी की डायरी की यह पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- ''बड़ी बात लावण्य का निर्देशक को 'ना' करना नहीं...

इस 'बड़ी बात' का मर्म है, लावण्य का विवेक, जिसने उसे 'बाहरी रूप' की हदों को समझा दिया है।'' उसकी इस प्रतिक्रिया से यह साबित होता है कि वह अपने संतान के नैतिक चरित्र के विकास के प्रति सजग थी। दरअसल तिल-तिल कर लावण्य में पनपते विवेक के पौधे की वह बराबर खबर रखती थी। इतना ही नहीं वह अपनी सूझ-बूझ के सहारे दृढ़ता के साथ लावण्य में छिपी संभावनाओं को उभारने के लिए आवश्यक हालात के निर्माण में भी जुटी थी। आज की स्त्री यदि लावण्य के मां की सी भूमिका निभा पाए तो भावी पीढ़ी एक सुसंस्कृत समाज के गठन में सक्षम हो सकती है।

दिखावापन आधुनिक समाज का एक विकृत मूल्य है। यह मूल्य जहां व्यक्ति को अहंवादी बनता है वहीं वह व्यक्ति को दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप करके अपने महत्व का डंका पीटने के लिए उकसाता है। दिखावेपन की इस विकृत इच्छा को माल बेचने और पूंजी कमाने के लिए बाजारवादी ताकतें बढ़वा देती हैं। यह बात गौरतलब है कि आधुनिक समाज में दिखावापन एक आम बात हो गई है। इस मूल्य के जीवन में घुसपैठ से पैदा होने वाले हालात पर आज कायदे से विचार करने की जरूरत है। इस बात में कोई शक नहीं है कि आधुनिक समाज में पूंजी के दम पर फैल रहा दिखावापन आत्मा के सात्विक गुणों का नाश कर रहा है। हालात के इस दौर में लावण्य के चरित्र की यह बात गौरतलब है कि उसने अपने अपार धन का व्यय दिखावे के लिए नहीं सौंदर्य सृजन के लिए किया। इस सृजन के केन्द्र में व्यवस्था स्थापन का विशेष आग्रह दिखता है। चाहे घर की सजावट हो, दिनचर्या निर्धारित करने का प्रश्न या फिर समाज कल्याण का कार्य हो लावण्य की धन सम्पन्नता जीवन और परिवेश में व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य को ही अंजाम देती रही है। वर्तमान समाज के पूंजीपतियों में दिखावेपन की जगह लावण्य के चरित्र की यह खासियत आ जाए तो वर्तमान समाज की शक्ल बदल सकती है।

जीवन और समाज को व्यवस्थित करके उसे विकास की राह पर आगे ले जाने की क्षमता एकाधिक चारित्रिक गुणों का गुणात्मक प्रतिफल है। इन गुणों में कर्मठता, संघर्षशीलता, व्यवहार में संतुलन, औपचारिकता के साथ ही गरिमापूर्ण भाव से आत्मीयता का निर्वाह, जीवन और परिवेश के प्रति सजगता, शोध दृष्टि, दायित्वों की समझ, कार्यानुरूप समय के खाने तैयार करने का गुण, सपने देखने की ताकत, सपनों को पूरा करने के लिए व्यवहारिक योजनाएं बनाने का गुण शामिल है। लावण्य के चरित्र के इन गुणों का परिवेश पर प्रभाव इन पंक्तियों में झलकता है-

''उनकी सूझबूझ, उनकी सख्ती, उनकी मिठास, उनका अनुशासन, उनका सलीका, उनके सिद्धान्त, पारिजात की खुशबु की तरह कलकत्ते के विद्वत समाज और आभिजात्य वर्ग दोनों को यकसाँ सुवासित करने लगे।''

दरअसल व्यक्ति की शिक्षा उसमें इन गुणों का बीज रोप सकती है। आधुनिक समाज में विद्यार्थियों को शिक्षा के जरिए बाजार की शर्तों पर डिग्रीधारी व्यक्ति बनाने के बजाय एक आत्मचेतस व्यक्ति कैसे बनाया जाए इस बात पर आज कायदे से विचार करने की जरूरत है।

लावण्य ने जीवनानुभवों से हासिल शिक्षा के सहारे अपने परिवार के युवाओं को जीवन जीने की कला सिखाई। गौर करने लायक बात यह है कि लावण्य की शिक्षा पद्धति के केन्द्र में एक ओर समाज कल्याण का उद्देश्य स्थापित है तो दूसरी ओर मनपसंद कार्यक्षेत्र चुनने की आजादी भी है। गौर करें कि यहाँ आजादी और समाज कल्याण का मुद्दा दोनों ही जीवन के केन्द्र में प्रतिष्ठित हैं। जीवन न तो सिर्फ समाज कल्याण की धुरी पर घूम रहा है और न ही उद्देश्यहीन आजादी की धुरी पर। दरअसल समाज कल्याण और आजादी का भाव, दोनों मिलकर जीवन की पतंग को अनुभव के आकाश में उड़ा रहे हैं। वह आकाश जहाँ संघर्ष और कर्मठता से नए प्रतिमान स्थापित करने और अपने अनुभवों को समृद्ध करने की खुली छूट है। लावण्य इन युवाओं के जीवन में सूत्रधार की भूमिका निभाती है। ऐसा सूत्रधार जो अपने जीवन ज्ञान के सहारे अपने अनुयायियों के मन के तारों

को बिखरने से रोकता है। इस लिहाज से देखें तो लावण्य की शिक्षा पद्धति एक ओर समाज कल्याण का मार्ग दिखा रही है और दूसरी ओर चरित्र निर्माण के दायित्व का भी निर्वाह कर रही है। दरअसल लावण्य की यह शिक्षा पद्धति परिवेश और व्यक्ति के अंतर्संबंधों को सुदृढ़ बनाने में शिक्षा की भूमिका पर पुनर्विचार करने की अपील कर रही है।

देश को व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए संविधान में स्पष्ट निर्देश होते हुए भी अलग-अलग क्षेत्रों में व्यवहारिक स्तर पर अव्यवस्था दिखाई देती है। दरअसल समाज की न्यूनतम इकाई व्यक्ति के कंधों पर ही व्यवस्था के रथ को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी है। व्यक्ति में सार्थक ढंग से जीवन निर्वाह करने का ज्ञान एवं संकल्प न हो तो सामाजिक व्यवस्था के रथ के पहियों का कमजोर होना स्वाभाविक है। बाजारवादी संस्कृति ने व्यक्ति के सबसे महत्वपूर्ण और सूक्ष्म अंग में अपनी सेंध लगाई है। यह अंग है मन। मन में बाजारवादी मूल्य विकृत इच्छाओं की हिलोरें पैदा करते हैं। विकृत इच्छाओं की सूची बहुत लम्बी है। इनका प्रभाव व्यवस्था पर पड़ना स्वाभाविक है। लावण्य का जीवन इस गंभीर समस्या से टकराने की राह दिखा रहा है। यह राह मन को आश्रम व्यवस्था में बांधने की राह है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में जीवन आश्रम व्यवस्था में बंधा हुआ था। लावण्य के जीवन में बाह्य तौर पर ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों के विधि-निषेधों का निर्वाह करने की औपचारिकता न रहने के बावजूद उसका जीवन भावनाओं के स्तर पर उत्तरोत्तर इन्हीं आश्रमों की राह से गुजरा है। विद्यार्थी जीवन में ज्ञानार्जन का लक्ष्य, गृहस्थ जीवन में पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह, वृद्धावस्था में गुरुजी के आश्रम में जीवन यापन और अन्ततः शरीर और आत्मा में अभेद की अवस्था हासिल करना। इसी राह पर चलकर लावण्य ने युवा पीढ़ी और समाज की भरपूर सेवा की है। गौर करने लायक बात यह है कि वर्तमान समाज में शिक्षार्थियों के जीवन को दिशा देने वाली सार्थक शिक्षा पद्धति नहीं दिखती। शिक्षा आज नैतिकता, जीवन बोध, सार्थक जीवन जीने के ज्ञान से कटकर डिग्री, पाठ्यक्रम, प्रमाण पत्र तक सीमित होकर रह गई है। सांस्कृतिक संकट के इस दौर में लावण्य का जीवन और उसके द्वारा निर्देशित शिक्षा का मार्ग आधुनिक शिक्षा की भूमिका और पद्धति पर पुनर्विचार करने की अपील करते हैं।

वैदिक युग से भारतीय संस्कृति में आत्मज्ञान से प्रेरित चिंतन की एक समृद्ध परिपाटी रही है। आत्मा का अस्तित्व, परमात्मा और आत्मा का संबंध, जगत में आत्मा के संस्कार का दायित्व जैसे तमाम सवालों का एक सिरा व्यक्ति के आत्मसंस्कार से जुड़ा हुआ है। यह गौरतलब है कि दर्शनशास्त्रों के इन सवालों में व्यक्ति में जीवन दर्शन तैयार करने का बीज रोपने की ताकत है। आधुनिक समाज के व्यक्ति का जीवन बाजारवादी दर्शन की धुरी पर घूमता है उसका ब्रह्मचर्य बाजार की प्रतियोगिता के लिए तैयार होने में बीतता है। नौकरी के साथ गृहस्थ जीवन का सूत्र बंधा हुआ है। आत्मा के स्तर पर चेतस रहने के द्वार पर बाजारवादी मूल्य किवाड़ लगाए हुए हैं। शिक्षा, धर्म, दर्शन, कला तक इन मूल्यों का व्यापक प्रसार व्यक्ति में आत्मतत्व को जानने की भूख पैदा ही नहीं होने देते।

आत्मा, माया, परमात्मा जैसी अवधारणाओं को सामंती मूल्यों ने जितना भ्रष्ट किया है उतना ही बाजारवादी मूल्यों ने। सामंतवाद ने जहाँ इन अवधारणाओं के इर्दगिर्द अंधविश्वास और कर्मकाण्डों के तार बुने वहीं बाजारवादी मूल्यों ने लाभ कमाने के लिए इन अवधारणाओं को इच्छानुरूप परिभाषित किया। इसके दृष्टांत फिल्मों में देखे जा सकते हैं। फिल्मों में इन अवधारणाओं का प्रयोग दर्शकों का कौतूहल बढ़ाने और उन्हें विस्मित करने के लिए किया गया। बाजारवाद और सामंती मूल्यों का विकृत गठजोड़ तो अंधविश्वासों को हवा देकर भाग्य परिवर्तन के लिए आध्यात्मिक वस्तुओं की खरीद को भी बढ़ावा दे रहा है। ऐसे माहौल में बुद्धिजीवी यदि बुद्धिवाद का हवाला देकर उपरोक्त अवधारणाओं को अंधविश्वास का पुंज कहकर इन पर सार्थक चर्चा करने की बात को पीछे धकेलते रहे, तो आधुनिक व्यक्ति का जीवन बाजारवाद की धुरी पर ही घूमता रहेगा।

'लावण्यदेवी' उपन्यास में आधुनिक व्यक्ति में भारतीय संस्कृति के आध्यात्म ज्ञान से प्रेरित आत्मचिंतन, आत्मसंस्कार, आत्मसंयम के सवालों के बीजों को रोपने की साफ कोशिश दिखाई देती है। इस संदर्भ में लावण्य की यह पंक्तियां देखी जा सकती हैं-

''क्या इसे ही 'आत्म-चैतन्य' कहते हैं ? ...क्या यही वह अनन्त अखंड सत्ता है जो चक्र की धुरी की तरह परिधि का न्यास करती हुई भी उसकी नश्वरता से परे है ?''

समाज में किसी भी रीति को प्रचलित करने के लिए उससे संबंधित अवधारणात्मक शब्दों की ओर लोगों का ध्यान खींचना जरूरी है। गौर से देखें तो बाजार भी विज्ञापनों के जरिए यही कार्य करता है। बाजारवादी मूल्यों को चुनौती देने के लिए भारतीय आध्यात्म ज्ञान से संबंधित शब्दावली की ओर लोगों का ध्यान खींचना जरूरी है। शब्दावली का बीज जनमानस में पड़ने के बाद प्राचीन भारतीय दर्शन में प्रस्तुत उन शब्दों की परिभाषा और इसके साथ ही इन शब्दों की युगानुरूप व्याख्या की ओर भी लोगों का ध्यान खींचना होगा। 'लावण्यदेवी' उपन्यास में भारतीय आध्यात्म ज्ञान को जीवन की व्यवहारिक कसौटी पर कसते हुए आधुनिक जीवन के लिए उपयोगी जीवन सूत्र दिए गए हैं। इस लिहाज से देखें तो इस कृति में बाजारवादी संस्कृति से शुष्क होते भारतीय जन-मानस को प्रगतिशील आध्यात्म ज्ञान से सींचकर उर्वर बनाने की कोशिश दिखाई देती है।

आधुनिक समाज में बढ़ती अनैतिकता और स्वार्थपरता जैसे मूल्यों से जूझने के लिए मुक्तिबोध ने 'आत्मसंघर्ष' को जरूरी माना था। सुविधाओं के बोझ तले छटपटाती आत्मा को मुक्त करने के लिए व्यक्तित्वांतरण की जरूरत पर जोर दिया था। दरअसल आत्मसंशोधन की राह अपनाने और व्यक्तित्वांतरित होने का निर्णय लेना आसान नहीं है। इस संदर्भ में मध्यवर्गीय व्यक्ति के कठिन अंतर्द्वन्द्व भोगने का दृश्य मुक्तिबोध के ही 'अंधेरे में' कविता में देखा जा सकता है। भारतीय आध्यात्म दर्शन के तत्व ज्ञान में व्यक्ति को देह से परे ले जाकर आत्मसत्य के प्रति सजग बनाने की ताकत है। यह सजगता व्यक्ति को आत्मसंतोषी बना सकती है। उसमें सीमित साधनों के जरिए ही आत्मसंस्कार की इच्छा का बीज रोप सकती है। भारतीय आध्यात्म ज्ञान पर शोधपरक चिंतन युग की मांग के अनुरूप विकास की नई राह निर्धारित करने का विवेक दे सकती है। विवेक से प्रेरित ऐसे जीवन सूत्र 'लावण्यदेवी' उपन्यास में बिखरे पड़े हैं।

बाजारवादी मूल्यों ने समाज में प्रचलित सकारात्मक अवधारणाओं की परिभाषाओं को विकृत कर दिया। इस क्रम में आत्मविश्लेषण, आत्मसंस्कार, आत्मज्ञान जैसी भारतीय संस्कृति की अमूल्य अवधारणाएं कालचक्र में दबती चली गईं। आत्मा पर पूंजीवादी मूल्यों का दबाव बढ़ता ही चला गया। आधुनिक समाज के घुटन, ऊब, संत्रास जैसे लक्षण इसी के फल हैं। 'लावण्यदेवी' उपन्यास में समाज में प्रचलित संभावनाशील अवधारणाओं को पुनर्परिभाषित किया गया है। इस उपन्यास की लावण्य अपने जीवन बोध से इन अवधारणाओं को नए ढंग से परिभाषित करती है।

धन कमाने के लिए आधुनिक समाज का व्यक्ति अपना श्रम बेचता है। बाजारवादी मूल्यों की धुरी पर घूमते इस व्यक्ति के जीवन में विश्राम शब्द एक संजीवनी की तरह है। लावण्य के अनुसार श्रम अगर ऐसे विशिष्ट कार्य के लिए किया जाए जिससे आनन्द की अनुभूति हो तो ''उसमें श्रम कहाँ होता है ? वे तो विश्राम के परम क्षण होते हैं, क्योंकि अच्छे कार्य के परिणाम का आनन्द हमें ऐसी स्फूर्ति से भर देता है कि हम हवा से भी हल्के होकर उड़ने लगते हैं'' गौर करें कि यहां श्रम के उद्देश्य को अर्थ से काटकर आनन्द से जोड़ने की कोशिश की गई है। इस आनन्द का रिश्ता कल्याण कार्य से है। आधुनिक समाज में ऐसे कौन से कार्य हो सकते हैं, जो जनहितकारी होने के साथ-साथ आजीविका कमाने का साधन भी बन सकें, इस बात पर कायदे से विचार करने की जरूरत है। यहाँ एक बात गौरतलब है कि इसी के साथ समाज में स्वार्थपरता, पूंजी बटोरने की मानसिकता, सुविधापरस्ती जैसे मूल्यों से लड़ने के लिए आवश्यक दर्शन का प्रचार-प्रसार भी जरूरी है। आत्मविकास के बगैर बाजारवादी मूल्यों के दलदल से बाहर निकलने की सीढ़ी चढ़ना मुश्किल है।

बाजारवादी संस्कृति में व्यक्ति शरीर के लिए सुविधाएं बटोरने की कोशिश में अनावश्यक दौर में शामिल हो जाता है। इसी शरीर को यहां ईश्वर का गुल्लक कहा गया है। 'जिसमें संचित जीवात्मा के कर्म, स्वतः ही उस परमात्मा-रूपी 'रिजर्व बैंक' के पास पहुँच जाते हैं।'' गौर करें कि यहां शरीर को कर्म के आधार पर परिभाषित किया गया है। साथ ही धर्म की आधुनिक परिभाषा के जरिए कर्म से धर्म का संबंध स्थापित किया गया है। लावण्य के अनुसार धर्म 'सही जीवन जीने की आचार संहिता है।' धर्म की यह परिभाषा आधुनिक समाज में धर्म की कट्टर और संकीर्ण परिभाषाओं को चुनौती देती है। इसी संदर्भ में यहाँ दी गई 'सेक्यूलर' की परिभाषा पर भी एक नजर डालना जरूरी है। लावण्य ने 'सेक्यूलर' की परिभाषा 'धर्मनिरपेक्ष' नहीं, 'सर्वधर्म सापेक्ष' मानी है। जीवन में धर्म की स्थिति अनिवार्य है। धर्म से जुड़कर कर्म में सोद्देश्यता आती है। इसलिए कर्म को अपनी धुरी पर घुमाने वाले धर्म की प्रकृति उदार और समावेशी होनी चाहिए।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है 'धर्म को धोखा नहीं दिया जा सकता, कानून को दिया जा सकता है।' भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा के साथ जनमानस की आत्मा के तार सदियों से जुड़े हुए हैं। सामंतवाद तथा बाजारवाद ने धर्म के साथ जुड़े शांति, मानवता, न्याय के तंतुओं को काटकर इसका तांता अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, बाह्याडम्बर और पूंजी से जोड़ दिया है। जिसके चलते व्यक्ति धर्म के नाम पर अमानवीय तक होने से बाज़ नहीं आता। धर्म की अवधारणा के इस स्खलन से समाज को सही ढंग से चलाने के लिए कानून पर निर्भरता बढ़ गई है। लेकिन कानून तो व्यक्ति के लिए नियमों का पुलिंदा है। वह बाहर से आरोपित है। उसका आत्मा से कोई रिश्ता नहीं है। इसलिए बाजारवादी संस्कृति में व्यक्ति उसे खरीदने और बेचने में झिझकता नहीं है। दरअसल आधुनिक समाज के ये हालात व्यक्ति की आत्मा को छूने की ताकत रखने वाले धर्म की मांग कर रहे हैं। 'लावण्यदेवी' उपन्यास में धर्म के ऐसे ही रूप को सामने रखा गया है। इस धर्म में विवाह संस्था व्यक्ति की स्वच्छंदता को मर्यादित करने हेतु है। पुराने और आधुनिक के द्वन्द्व में विवेक के सहारे मध्यम मार्ग चुनने का विधान है। साथ ही धर्म के पथ पर आगे बढ़ने की राह में अध्ययन और जीवनानुभवों से हासिल ज्ञान को समय की मांग के अनुसार महत्व देने पर जोर दिया गया है। इस धर्म में आत्मविश्लेषण की खास भूमिका है।

समाज में भावी पीढ़ी के स्वस्थ विकास के लिए भारतीय संस्कृति के प्रगतिशील मूल्यों को पुनर्जीवित करना जरूरी है। इसी के साथ इन मूल्यों का युगानुरूप संस्कार भी समय की एक बहुत बड़ी मांग है। 'लावण्यदेवी' उपन्यास में इन्हीं मूल्यों के बीज को व्यक्ति में रोप कर सुदृढ़ चरित्रों के गठन की राह दिखाई गई है। साथ ही यहाँ संकल्पधर्मी, कर्मठ व्यक्तियों के दम पर सांस्कृतिक संकट से जूझते समाज की काया पलट कर स्वस्थ समाज के निर्माण को संभव बनाने की राहें खोजी गई हैं। इस अर्थ में इस उपन्यास में सामाजिक विकास के नए आयाम की झलक दिखाई देती है।